



भूमण्डीकरण के दंश को उकेरती जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता



विनोद कुमार

कला एवं भाषा संकाय, लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी (फगवाड़ा) पंजाब,

सारांश :

पिछले तीन दशकों में विश्व-भर का स्वरूप इतनी तीव्रता से परिवर्तित हुआ है, जितना उससे पूर्व के कुल सौ वर्षों में भी संभवतः नहीं हुआ होगा। परिवर्तन की इस सुनामी का एक सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण कारक सूचना-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आई क्रान्ति है। सूचना-क्रान्ति की अत्याधिक एवं अत्याधुनिक आलोक किरणों ने संसार-भर के छोटे-बड़े सभी देशों को उस मंच तक ला पटका है, जहाँ से वह सूदूर पूर्वीय देशों से लेकर अस्ताचल में बसे तथाकथित विकसित एवं व्यवस्थित देशों तक अपनी दृष्टि और पहुँच बनाने में समर्थ हो रहा है। आज पूरा ग्लोब एक मण्डल बन चुका है, जिसे आंग्लभाषा में ग्लोबलाइजेशन और हिन्दी में भूमण्डलीकरण नाम से जाना गया है। भूमण्डलीकरण को बहुत से विद्वानों ने भी इसे सूचना, तकनीक और प्रौद्योगिकी से जोड़ते हुए सम्पूर्ण ग्लोब को एक गाँव, एक मण्डल के रूप में परिवर्तित होना स्वीकार किया है, जहाँ सभी एक दूसरे की पहुँच में हैं और एक दूसरे के सहयोगी बन निरन्तर विकास की सीढियों पर चढ़ रहे हैं; लेकिन सच्चाई इससे अलग है, जिसे कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव ने अपनी कविताओं में अत्यन्त संवेदनपूर्ण ढंग से पिरोया है।



प्रस्तावना:

लोचनार्द्र-युक्त संयुक्त-संवेदन के अन्तःलोक में
अजब-गजब सा हालचाल इन दिनों है मर्त्यलोक में
जब यूँ उलझी और है असुन्दर-सुन्दर की गिरह
अ-परिभाषित हो गई जो बिलकुल तुम्हारी तरह
चीर अंधेरा बनके मानुष राग ये उज्वल गाते हैं
अनभै-कथा की सूर्य-किरण बनके सामने आते हैं
पतझर में ऋतुराज जो बन सत्य हस्तांतरण करते हैं
जितेन्द्र श्रीवास्तव रण में ठन नित्य कायांतरण करते हैं

जिस प्रकार एक समय अधिकांश देशों पर ब्रिटिश का साम्राज्य था और सभी देशों को वहीं से हांका जाता था, ठीक उसी प्रकार बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से अमेरिका समस्त संसार का स्वयंभू स्वामी बन बैठा है। उसने पूँजी की अकूत ताकत से नवीनतम प्रौद्योगिकी को विकसित कर विश्व के उपभोक्ताओं को बाजार की सेवा लेने को लालायित किया है। इस तथ्य को अमेरिका के विदेश मन्त्री हेनरी किस्सिंगर ने सन् १९९९ में स्वयं स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार ब्रिटिश दौर में अन्य कोई विकल्प नहीं था, उसी प्रकार आज के दौर में अमेरिका का विकल्प किसी के पास नहीं है। सभी को चाहते या न चाहते हुए उनका अनुकरण करना ही होगा। जिसके लिए धीरे-धीरे उन्हें वर्ल्ड बैंक और इन्टरनेशनल मोनिटोरिंग के सामने विवश हो आर्थिक गुलाम बनना पड़ेगा। [1]

जब कभी ग्लोबलाइजेशन, भूमण्डलीकरण और वैश्वीकरण शब्द हमें सुनने और पढ़ने को मिलते हैं तो अक्सर परम पवित्र वैदिक आप्तवाक्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के समानान्तर एक भ्रमात्मक अर्थ स्थापित करने का प्रयास करते हैं, लेकिन हमें सर्वथा सचेत रहने की आवश्यकता है कि इसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसा कुछ भी नहीं है; लेशमात्र भी नहीं, उपर्युक्त शब्दों की नीयतों एवं नीतियों और अन्तिम

उद्देश्य को समझने के बाद इसे भूमण्डलीकरण नहीं वरन् भूमण्डीकरण कहना अधिक संगत होगा। क्योंकि देश और दुनिया का एक बहुत बड़ा वर्ग इस समृद्धि से न केवल दूर है, बल्कि इसका निशाना बनकर रह गया है।

प्राकृतिक साधनों-संसाधनों और सम्पदाओं से भरपूर भारत ने विदेशों तक में अपनी धाक जमाई है, फिर क्या कारण है कि आज भी हमारा देश विश्व-मानक पर कितने ही क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ है। मानव-कल्याण की तमाम योजनाएं बनाई जाती हैं लेकिन अपने अंजाम तक पहुँचने से पहले ही ज़मींदोज़ हो जाती हैं। अमीर है दिन-प्रतिदिन अमीर हो रहा है, और गरीब दिन-प्रतिदिन और गरीब हो रहा है।

नोबेल पुरस्कार विजेता प्रख्यात अर्थशास्त्री डॉ.अमर्त्य सेन ने भी भारतीय परिप्रेक्ष्य में इंगित किया है कि - शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी आधारभूत सामाजिक आवश्यकताओं के अभाव में उदारीकरण का कोई अर्थ नहीं है। आर्थिक विकास में जहाँ पूँजीपतियों, उद्योगपतियों, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों अर्थात् राष्ट्र के मुट्ठी भर लोगों को लाभ होता है, वहीं भारत का बहुसंख्यक वर्ग इससे वंचित रह जाता है या नगण्य लाभ ही उठा पाता है। इस प्रकार ट्रिंकल डाउन का सिद्धान्त फेल हो जाता है।

अमेरिका के चर्चित विचारक नोम चोमस्की का स्पष्ट मानना है कि भारत में जिस प्रकार के विकास से आर्थिक दर में वृद्धि हुई है, उसका भारत की अधिकांश जनसंख्या से कोई सीधा वास्ता नहीं दिखता। यही कारण है कि भारत सकल घरेलू उत्पाद के मामले में जहाँ पूरे विश्व में चतुर्थ स्थान पर है, वहीं मानव विकास के अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों मसलन, दीर्घायु और स्वस्थ जीवन, शिक्षा, जीवन स्तर इत्यादि के आधार पर विश्व में बहुत पीछे हैं।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में सर्वाधिक ज्वलन्त तथ्य जिनकी प्रभाव-चर्चा है उनमें बाजारीकरण भी है। अर्थतन्त्र के इस कंटीले घेरे में उपभोक्ता के सपनों का संसार मानों उसे खींच ले आता है और अदृश्य जंजीरों में जकड़ लेता है जिससे मुक्त होना न तो वह चाहता ही है और न ही संभव ही लगता है। 'संस्कृति और भूमण्डलीकरण' (आलोचना सहस्राब्दी अंक-६, पृ.७२) के अन्तर्गत एजाज अहमद भूमण्डलीकरण की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'भूमण्डलीकरण बाजार को एक कर रहा है और मनुष्य को बांट रहा है क्योंकि भूमंडलीय बाजार के लक्ष्यों के लिए मनुष्यों को सर्वोत्तम इस्तेमाल तभी किया जा सकता है, अगर वे एक दूसरे से जुड़े लोगों की तरह नहीं, बल्कि व्यक्तिगत उपभोक्ता की तरह व्यवहार करें। समता की राजनीति को विषमता की राजनीति से और सहयोग के समाज की अनन्त प्रतियोगिता के समाज से विस्थापित करने के इस युद्ध में भूमंडलीय स्तर पर उत्तर आधुनिकता और तीसरी दुनिया के सन्दर्भ में उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धान्त मुख्य औजार है वर्ग-चेतना और साम्प्रदायिक-चेतना।

सुरसा के मुख की तरह विकराल होती जा रही इस भद्दी संस्कृति के के सुन्दर सजीव चित्र हिन्दी कविता में भी देखने को मिलते हैं। इस उपभोक्ता संस्कृति के कसते जा रहे पंजों में पिसती जा रही मानवीयता के दर्शन सम्बन्धों के बीच आते इस बाजार की परतों को अपनी कविताओं के माध्यम से उघाड़ने के साहसिक काम अनेक नये कवियों ने बखूबी अन्जाम दिया है।

कविता की नई बयार को लेकर, खुशनुमा मौसम की बहार को लेकर, कभी भूमण्डीकरण की मार को लेकर और कभी लघुमानव की पुकार को लेकर कुमार विकल, चंद्रकांत देवताले, देवेन्द्र कुमार, विजेंद्र, प्रयाग शुक्ल, विनोद कुमार शुक्ल, लीलाधर जगूड़ी, ज्ञानेन्द्रपति,वेणु गोपाल, मंगलेश डबराल, ऋतुराज, आलोक धन्वा, राजेश जोशी, सोमदत्त, गिरधर राठी, सौमित्र मोहन, नन्द किशोर आचार्य, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, विनोद भारद्वाज, विष्णु नागर, असद जैदी, अरुण कमल, कुमार अम्बुज और उदय प्रकाश आदि ने अपनी काव्य-रश्मियाँ उत्कीर्ण की हैं। नव-लेखन को प्रतिबद्ध कवियों की इस श्रृंखला में एक नाम जो न केवल तेजी से आ जुड़ा है बल्कि अपना स्थाई स्थान ससम्मान बनाया है और वह है जितेन्द्र श्रीवास्तव, जिन्होंने 'अनभै कथा', 'असुन्दर सुन्दर', 'इन दिनों हालचाल', 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' और 'कायान्तरण' नाम से पाँच काव्य-संग्रह साहित्य-जगत् को दिए हैं और कवि की गहन अनुभूति एवं सशक्त अभिव्यक्ति के कारण चर्चित भी हुए हैं।

पूँजीवादी प्रवृत्ति की आगोश में फल-फूल रहे भूमण्डीकरण के चक्रव्यूह के पाश ने मानवीयता, भाषा-संस्कृति, सामाजिकता और राष्ट्रीय-भावना को अभिमन्यु-सा निहत्था कर दिया है। कवि जितेन्द्र लिखते हैं -

पूँजी की रेल-पेल

धक्का-मुक्की में पलकर

जवान होता है जब लड़का

वह आलू को आलू

और टमाटर को टमाटर की तरह चखना चाहता है।[2]

युवा पीढ़ी के अन्तस् में व्याप्त इस अतृप्ति को कवि ने बखूबी समझा है, जो कदापि यह स्वीकार नहीं करना चाहती कि समय का यह दंश उन्हें लील जाए। पूँजी के इस खेल में जीवन की स्वाभाविकता एवं सहजता खत्म होती जा रही है। भारत के गाँव न अब गाँव रह पाए और न गाँव का बचपन गाँव का बचपन ही रहा। अर्थतन्त्र ने सारे अर्थ के अनर्थ कर दिए हैं-

देखते ही देखते
गाँव से छोकरे गए
मन से हुलास
इमली से खटास गई
आम से मिठास महुए से रस गया
आँखों से नींदा। [3]

स्वतन्त्रता के छ दशकों के सफर को पार कर जहां तक शिक्षा, बिजली और सड़कें भी पहुँच नहीं पाई हैं, वहाँ भी भूमण्डीकरण का अजगर अपना शिकार कर रहा है। और आम आदमी की तो बिसात ही क्या अच्छी-अच्छी हैसियत को नाकों चने चबवा दिए हैं। सब कुछ बाज़ार के कब्जे में जा रहा है।

मनुष्य जिस कौड़ी को दांत से पकड़े हुए था, उसे बाज़ार का 'पैसा' पैसे को खींचता है। और इसी के चलते आपसी विश्वास की चिड़िया पता नहीं कहाँ फुर हो गई है।

अब कस्बों में बहुत दिनों तक
चल नहीं पाता काम
विश्वास और भरोसे पर
अब वहाँ अपना अर्थ बदल रहे हैं मुहावरे
समा रहे हैं तेज़ी से बाज़ार के पेट में। [4]

भूमण्डीकरण ने हमारी अर्थव्यवस्था को स्टॉक मार्केट के हवाले कर दिया है। लोगों के जीवन से स्थिरता को छीन लिया है। देश को मोबाइल और कम्प्यूटर के कूड़ेदान में बदल डाला है। यही नहीं उसने समूची मानव-जाति को उपभोक्ता में बदल डाला है। [5]

आज के समय की यह विडम्बना ही कहिए कि बाज़ारीकरण का यह असर केवल बाज़ार तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि अब इसका प्रसार पूरी तरह से आपसी रिश्तों पर भी दिखाई देने लगा है-

रिश्तों के बीच आ गया है पैसा
जैसे खाने में दाँतों के नीचे कोई कंकड़। [6]

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस बाज़ार ने अपना विष-मय असर डाला है कि सब कुछ विषम हो गया है और जब कुछ भी विषम होता है तो ज्वर का मानसिक एवं शारीरिक संताप सहना पड़ता है। ऐसे विकट समय में कवि जितेन्द्र की यह पंक्तियाँ देखें-

पर यह समय शापित है
इन दिनों
बाज़ार के इतने चेहरे दिखते हैं एक साथ
कि मिथकों में साँस ले रहे सारे मायावी चरित्र
मिलकर भी नहीं बना सकते उतने चेहरे। [7]

डा. अभिलाष सिंह डा. वीरेंद्र सिंह यादव एवं डा . रावेन्द्र कुमार साहू के कुशल संपादन में संपादित पुस्तक भारतीय संस्कृति :कल,आज और कल की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि वर्तमान की यदि बात की जाए तो यह उत्तर-आधुनिक ,भूमण्डीकरण एवं

बाजारवादी संस्कृति का युग है जिसमें अपना कुछ नहीं है वरन् जो कुछ अपना है वही सबका है। आज के इस सांस्कृतिक क्षरण के युग में 'रीति और 'सदाचार जैसे शब्दों का विलोप होता जा रहा है जिससे मनुष्य के जीवन में परिवर्तन भी तीव्र गति से प्रारंभ हुए हैं।

इस परिवर्तन की आँधी ने सांस्कृतिक संक्रमण एवं जीवन मूल्यों का क्षरण शुरू कर दिया है परिणामस्वरूप जन सामान्य के जीवन मूल्यों में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। अनेक विद्वानों में से एक का मानना है कि- "भूमण्डलीकरण शब्द बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अधिक प्रचलन में आया; जब सोवियत संघ एवं बर्लिन की दीवार के विघटन के उपरान्त मुक्त अर्थव्यवस्था एवं वल्ड वाइड वेब ने राष्ट्रीय सीमाओं को संकुचित करते हुए दुनिया को वास्तविकता के धरातल पर एक वैश्विक गाँव में तब्दील कर दिया।

तकनीकी सूक्ष्मता, सूचना क्रान्ति एवं खुले बाजार ने वैश्विक गतिशीलता का ऐसा विस्तार किया कि इसका व्यापक प्रभाव न केवल आर्थिक धरातल पर बल्कि राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी पटलों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। [8] और विडम्बना देखिए कि उपभोक्तावादी प्रवृत्ति की अदम्य भावना के कारण बाज़ार में हर वस्तु धड़ल्ले से बिक रही है, क्योंकि गुणयुक्त हो अथवा गुणहीन, अच्छी हो या बुरी उसे ऐसा आकर्षक रूप दिया जाता है कि उपभोक्ता उसके पास भागा-भागा सा दौड़ा-दौड़ा सा चला आता है।

आम आदमी उसके केवल बाह्य आकर्षण एवं बनावटी सौन्दर्य छवि पर ही न्यौछावर हो जाता है। कवि ने इस भाव को बड़े ही निकट जा कर समझा है और अपनी कविता में उतारा है। कवि पदार्थ की इस चालाकी को कुछ इस प्रकार से व्यंजित करता है-

उसके मूँह से चूर रही है लार
वह बढ़ रहा है
हमारी इच्छाओं की डोर थामे
अब वह लपकना चाहेगा हमारी आत्माओं को
जिनका इस्तेमाल करना चाहता है वह
रूमाल की तरह। [9]

भारतीय समाज की इस दशा के लिए कौन जिम्मेवार है? यह प्रश्न तो सौ प्रतिशत अब बेमानी है, किन्तु जरा पीछे झाँककर देखें तो कई पर्तें खुल जाएँगी और कई पर्दे उतर जाएँगे। और यह आयेने की तरह स्पष्ट हो जाएगा कि भूमण्डलीकरण और साथ ही साथ भारतीय सांस्कृतिक संक्रमण तब से शुरू होता है जबसे हमने जीवन की आवश्यकताओं की हदों के पार लौंघ लगज़री को स्वीकार किया है। और आज यह हमारी कमजोरी बन गई है।

कमलनयन काबरा के शब्दों में भारत का धनी मानी शहरी तबका पूरी तरह उपभोक्तावाद की चपेट में है और पश्चिम के उपभोग स्तर तथा जीवन प्रणाली की हू-ब-हू नकल करना उनके लिए उपलब्धि के नए मानदंड बन गए हैं। [10] और आज यह रोग मध्यमवर्ग से होकर निम्न वर्ग तक और शहर और कस्बों से होता हुआ गाँवों तक में भी अपना प्रसार कर चुका है। कवि की यह पंक्तियाँ इसी तथ्य को उजागर करती हैं-

यह हमारे समय की विडम्बना है
कि हमारे बीच तेजी से कम हो रहे हैं। [11]

कम्युनिस्ट घोषणापत्र में पूंजीवाद और भूमण्डलीकरण का जिस तरह आपसी रिश्ता बताया गया है उसे आज की दुनिया में प्रत्यक्ष होते अनेक विचारक देख रहे हैं। उदाहरण के लिए बाजार की तलाश में गरीब मुल्कों में पूंजीवाद का प्रवेश मार्क्स की शब्दावली में बहुत कुछ बलात्कार का रूपक बन जाता है। [12]

मण्डलीकरण के इस दौर में मानवीय मूल्यों के तो मानों मायने ही खो रहे हैं। सद्भाव, दया, करुणा और प्रेम कहीं ढूँढने पर भी मिलना मुश्किल हो रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह कि अब बिना मोल प्रेम भी प्राप्य नहीं है। इन सबके संकेत कवि जितेन्द्र की कविताओं में सुलभ हैं।

मठों, मन्दिरों, मिलों और शापिंग-मॉलों की ऊँची अट्टालिकाओं से दूर भारत की गरीब दीन हीन बसों और गाड़ियों में गीतों के टुकड़ों के बदले रोटी के टुकड़ों का इन्तजाम करती हुई अपनी बेतहाशा पीड़ा को छिपाती हुई भी पेट की भूख की खातिर लोगों की भूखी नजरों के दंश को झेलती हैं-

पर गायब नहीं होने देती होठों की हँसी
उन्हे हँसाता रहता है पेट का डर। [13]

भारत का अन्नदाता कृषकवर्ग भी भूमण्डलीकरण की चक्की में पिसा है। विदेशी निवेश के जरिए किसानों को अनेक मोहक स्वप्न दिखाकर गुमराह किया गया, लेकिन वस्तु-स्थिति यही है कि युग कोई भी रहा हो, किसान की हालत पर कभी गम्भीरता से सोचा ही नहीं गया।

सामन्तवादी और जागीरदारी प्रथा के समाप्त होने की घोषणा हुए एक पूरा युग बीत गया लेकिन वह राक्षस आज भी नये नये अवतारों में, नित्य नये मुखोटे पहने श्रमिकों और किसानों को समाप्त कर रहा है, जिसे कवि जितेन्द्र की कलम ने इनका भी चित्रण किया है-

यह धूम है कि आग
ठीक – ठाक बताएँगे वे किसान
जो बिना पनही महसूसते हैं इसका आसार
धरती पर/ आत्मा पर। [14]

भयानक रूप से युगीन संत्रास को भोगते हुए जाने कितने ही होरी आज भी साहुकारों के पाँवों को सहलाते दिखाई पड़ते हैं-

अब भी असंख्य होरियों की गर्दनें दबी हुई हैं
नये रायसाहबों की टाँगों के बीच।[15]

आज जबकि हर आम आदमी को अनेक सामाजिक एवं धार्मिक अव्यवस्थाओं से भी दो-चार होना कभी पड़ता है, तो नजदीक या कभी दूर-दराज की विषम घटनाएँ हमारे माथे पर चिन्ता की लकीरें उकेरती हैं। जितेन्द्र की कविता में जे.एन.यू. भी एक समय की पीड़ा को भोगता है, जो कवि को चिन्तातुर कर जाता है और उनकी कविता में उस टूटन का दुःख घुला हुआ था। [16]
लेकिन आशावादी, भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की कद्र करने वाले जितेन्द्र श्रीवास्तव को यह विश्वास है कि-

फिर भी हम
अपनी भाषा में चिल्लाएँगे
विद्रोह के स्वर में हमारे टूटे-फूटे शब्द
तुम्हारी संस्कृति से टकराएँगे। [17]

उपभोक्तावाद के इस दौर में भी कवि अपने भीतर संवेदना की एक लौ जलाये रखता है जो सामाजिकता की ओर संकेत है। यही संवेदना कवि ने “खबर” नामक कविता में उठाई है। एक मजदूर की विडम्बना कवि को भीतर तक संवेदित कर जाती है-

वह एक अदना-सा मजदूर/ खींचता था ठेला
बाँध कर पीठ पर बोरियां कोशिश करता था हंसने की
ज्यादा उम्मीद यह है कि उस मामूली आदमी के लिए
जगह ही न अखबारों में
समय ही न हो समाचार चैनलों के पास [18]

वस्तुवादिता के इस दौर में सम्पूर्ण देश एक अलग तरह की पराधीनता में जकड़ा गया है, जो १९४७ से पहले की पराधीनता से भी अधिक भयावह है। पहले यह पराधीनता राजनैतिक और भौतिक-स्तर तक ही सीमित थी, जबकि आज इसने हमारी मानसिकता को भी अपने कब्जे में ले लिया है। सारी दुनिया को अपनी चकाचौंध से अन्धा कर देने वाला भूमण्डलीकरण का यह दूसरा सूरज ‘सपनों के मर जाने’ से नहीं बल्कि नित्य नये सपने दिखाकर दंशित कर रहा है, जिसे कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता में बहुत ही प्रभावी ढंग से उकेरा गया है।

सन्दर्भ:

1. नारायण बट्टी,साहित्य और समय,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.५६
2. श्रीवास्तव, जितेन्द्र,अनभैकथा, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली,पृ.९४
3. श्रीवास्तव, जितेन्द्र,अनभैकथा, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली,पृ.११०
4. श्रीवास्तव, जितेन्द्र,असुन्दर सुन्दर, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली,पृ.६७
5. गोपाल प्रधान : भूमंडलीकरण और भारत <http://samalochan.blogspot.in>
6. श्रीवास्तव, जितेन्द्र,असुन्दर सुन्दर, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली,पृ.१२१
7. श्रीवास्तव, जितेन्द्र,असुन्दर सुन्दर, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली,पृ.१२१
8. http://booksamiksha.blogspot.in/2013/02/blog-post_7636.html
9. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, असुन्दर सुन्दर, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली २००८, पृ.१२२
10. काबरा, कमलनयन, भूमण्डलीकरण के भँवर में भारत, नई दिल्ली, २००८,पृ.११४
11. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, कायान्तरण, प्रथम संस्करण २०१२, नई दिल्ली,पृ.१०२
12. गोपाल प्रधान : भूमंडलीकरण और भारत <http://samalochan.blogspot.in>
13. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, असुन्दर सुन्दर, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली २००८, पृ.७४
14. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, अनभैकथा, प्रथम संस्करण २००३, नई दिल्ली,पृ.९८
15. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, कायान्तरण, प्रथम संस्करण २०१२, नई दिल्ली,पृ.४७
16. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, कायान्तरण, प्रथम संस्करण २०१२, नई दिल्ली,पृ.१०३
17. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, इन दिनों हाल चाल, प्रथम संस्करण २०११, नई दिल्ली,पृ.३१
18. श्रीवास्तव, जितेन्द्र, कायान्तरण, प्रथम संस्करण २०१२, नई दिल्ली,पृ.३२-३३